International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 855-856

वैदिक कालीन संस्थाएं सभा और समिति

गौरव कुमार राय
शोध छात्र, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

सैंधव संस्कृति के पश्चात् भारत में जिस नवीन सभ्यता का विकास हुआ उसे वैदिक अथवा आर्य सभ्यता के नाम से जाना जाता है। भारत का इतिहास एक प्रकार से आर्य जाति का इतिहास है। आर्यों का इतिहास हमें मुख्यतः वेदों से ज्ञात होता है जिसमें ऋग्वेद सर्व प्रचीन होने के कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सामान्यतः ऐसा माना गया है कि जिन विदेशी आक्रान्ताओं ने सैन्धव नगरों को ध्वस्त किया जा वे आर्य ही थे। स्वयं ऋग्वेद में इस संघर्ष का अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख भी मिलता है। आर्य कई जनों में विभक्त थे। इन्हें पंचजन' कहा गया है, जन के अधिपति को राजा कहा जाता था।

वैदिक काल में सामान्यतः राजतंत्र का ही प्रचलन था 'राजन' शब्द का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध के वातावरण में सेना और जाति का नेतृत्व करने के लिए राज–संस्था का उदय हुआ था। जेपी शर्मा का मत है कि इस काल के कुछ जनों में गणराज्यात्मक व्यवस्था प्रचलित थी।[1] दसवें मण्डल में गणतंत्रात्मक समिति का उल्लेख है।[2] राजा का कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना था। सभा और समिति नामक दो संस्थायें राजा की निरंकुशता पर नियंत्रण रखती थी। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर सभा का उल्लेख हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि सभा कुलीनों की संस्था थी जिसमें उच्च कुल का व्यक्ति ही भाग ले सकता था। इसके विपरित समिति सर्वसाधारण की सभा होती थी जिसमें जानों के सभी व्यक्ति अथवा परिवारों के प्रमुख भाग ले सकते थे। इनका शासन पर महत्वपूर्ण प्रभाव होता था।

अथर्ववेद[3] में एक स्थान पर पहले सभा का, फिर समिति का और सबसे बाद में मंत्रणा का उल्लेख हुआ है। यह क्रम देश के वैधानिक विकास की ओर संकेत करता है। विकास की प्रारंभिक स्थिति में प्रत्येक ग्राम प्रायः स्वतंत्र रूप से अपना पृथक–पृथक प्रबन्ध करता था। सर्वसाधारणा विषयों को तय करने के लिए ग्राम–निवासियों ने अपनी एक प्रबन्धकारिणी स्थानीय संस्था बन ली थी जो 'सभा' के नाम से प्रचलित हुई। ऋग्वेद में सभा का उल्लेख आठ बार हुआ है। यह सभा में इकट्ठे लोगों और सभा भवन, यानी सभा स्थल, दोनों का द्योतक है। अथर्ववेद[4] में एक स्थान पर सभा को 'नरिष्ठा' कहा गया है। नरिष्ठा का अर्थ यह प्रकट होता है ग्राम–निवासी अपनी सभा में वाद–विवाद के पश्चात् ही किसी निर्णय पर पहुंचते थे। लुडविग महोदय के अनुसार सभा उच्चतर भवन थी। जहां पुरोहित और अभिजात वर्ग के व्यक्तियों का जोर साधारण व्यक्तियों से संभवतः अधिक था। इसके सदस्यों को 'सुजात' अर्थात् कुलीन कहा गया है। लुडविग महोदय ने यह विचार व्यक्त किया है कि यह एक जनसाधारण की संस्था नहीं थी।[5] संभवतः सभा चुने हुए सदस्यों की एक स्थायी एवं स्थिर संस्था थी। काशी प्रसाद जायसवाल ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है।[6] सभा की बैठकों में भाग लेने वाले राज्य के प्रभावशाली एवं ज्येष्ठ मनुष्य हुआा करते थे जिन्हें समाज तथा राजनीति में विशेष सम्मान एवं वैभव प्राप्त था। उसके सदस्यों को 'सभासद', अध्यक्ष को 'सभापति' और द्वाररक्षक को 'सभापाल' कहते थे। सभासदों की बड़ी प्रतिष्ठा होती थी, किन्तु वह प्रतिष्ठा खोखली नहीं थी, सभासदों की योग्यताएं निश्चित थी। 'वाजसनेयी संहिता'[7] में सभाओं एवं सभापतियों को प्रणाम किया गया है। यह उनके वैभवशाली एवं गरिमामय अस्तित्व का सूचक है। वेदों में सभा के सहयोग तथा उसके आदर्शों के एकमत होने की कामना की गई है।[8]

वैदिक साहित्य में सभा सम्बन्धी जो उल्लेख मिलते हैं। उनसे भी अधिकांशतः सभा का ग्राम–संस्था होना सिद्ध होता है। एक स्थान पर सभा की वार्ता का विषय गाय और उनकी उपयोगिता है। ऋग्वेद की एक ऋचा में सभा को पासा और जुआ खेलने का जमाव कहा गया है।[9] इससे स्पष्ट होता है कि विचार–विमर्श के अतिरिक्त सभा ग्राम–निवासियों द्वारा सामूहिक नृत्य, संगीत आदि क्रीड़ाओं के स्थल के रूप में मनोरंजन का केन्द्र भी होती थी।

वैदिक काल में सभा के अन्य मुख्य कार्य राजा से संबंधित था। डॉ0 अल्तेकर का मत है कि उत्तरवैदिक काल में सभा संस्था न रह गई थी। वह राज–संस्था हो गई थी। शतपथ ब्राह्मण[10] के अनुसार राजा सभा में उपस्थित रहता था। सभासदों का पद अत्यधिक सम्मानित समझा जाता था।[11] डॉ0 काशी प्रसाद जायसवाल ने राष्ट्र के सभी सदस्यों को राष्ट्रीय सभा का मानते हुए मत व्यक्त किया है कि सभा एक सार्वजनिक संस्था थी। वैदिककाल में सभा न्याय के कार्यों का संपादन करती थी। सभा के आदेश का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता था अर्थात् जिसका निर्णय अंतिम और सर्वमान्य हो। सभा की तुलना आधुनिक सर्वोच्च न्यायालय से की जा सकती है। डॉ0 काशी प्रसाद जायसवाल ने भी सभा को राष्ट्रीय न्यायपालिका के समान बताया है। सभा दण्ड–विधि की अंतिम सभा थी।[12] ऋग्वेद के आधार पर सभा में न्याय सम्बन्धी निर्णय किये जाते थे।[13] ऋग्वेद में ऐसा उल्लेखित है कि जो व्यक्ति सभा में सफलता अर्जित करता है, उसके मित्रगण उत्साहित और उल्लाखित हो जाते हैं। इसी मत का समर्थन यजुर्वेद में भी किया गया है कि मनुष्य अपने पापों का प्रयाश्चित सभा में करते थे। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वैदिककाल में सभा के न्यायिक, सामाजिक, राजनीतिक कार्य अत्यंत ही महत्वपूर्ण थे।

वैदिककालीन प्रशासनिक क्षेत्र में सभा की भांति समिति का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वस्तुतः समिति एक महान सामूहिक संस्था थी, जिसमें सम्पूर्ण जनता का प्रतिनिधित्व होता था। इस प्रकार यह सर्वसाधारण की संस्था थी। काशी प्रसाद जायसवाल ने इसी संदर्भ में कहा है कि समिति का एक प्रकार से राष्ट्रीय सभा थी, क्योंकि राजा का चुनाव इसी के द्वारा होता था। लुडविग के अनुसार समिति की तुलना वर्तमान में लोकसभा से की जा सकती है, जहां जनसाधारण का प्रतिनिधित्व होता था। अथर्ववेद से यह पता चलता है कि महिलाएं भी इसमें शामिल होती थी।[14] अथर्ववेद के अनुसार

समिति का महत्वपूर्ण कार्य राजा का निर्वाचन करना था। यह पदच्युत भी कर सकती थी एवं अन्य व्यक्ति को राजा के रूप में चुनाव कर सकती थी। समिति संवैधानिक दृष्टि से प्रभुसत्ता सम्पन्न थी। समिति का अन्य महत्वपूर्ण कार्य व्यवस्थापिका सम्बन्धी माना गया है। समिति में विभिन्न समस्याओं पर विचार एवं बहस होता था तथा इसी दौरान हाथापाई की भी नौबत आ जाती थी।[15] इसी कारण ऋग्वेद में प्रार्थना की गई है कि समिति की कार्यवाही सौहार्दपूर्ण हो।

समिति संबंधी उल्लेखों से प्रकट होता है कि समिति एक केन्द्रीय राजनीतिक संस्था थी। ऋग्वेद में एक स्थान पर एक राजा समिति के सदस्यों से कहता है कि ''मैं तुम्हारा विचार और तुम्हारी समिति स्वीकार करता हूँ। वैदिक काल में जीवन के विभिन्न कार्यकलाप, पृथक–पृथक संस्थाओं के अन्तर्गत न होते थे। बहुधा किसी एक संस्था के अन्तर्गत ही राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक कार्य समान रूप से सम्पादित हो सकते थे। यहीं कारण है कि ऋग्वेद में हम समिति के अन्तर्गत राजनीतिक कार्यों के अतिरिक्त सामाजिक कार्यों के सम्पादित होने का भी आभास पाते है।[16] समिति राज्य की केन्द्रीय संस्था प्रतीत होती है। अथर्ववेद में एक स्थान पर उल्लेख है कि ब्राह्मण–समिति का अपहरण करने वाले राजा को समिति का सहयोग नहीं मिलना चाहिए। दूसरे स्थान पर राजा के लिए समिति के चिर सहयोग की शुभाकांक्षा प्रगट की गई है।[17] समिति के निर्णय भी वाद–विवाद के पश्चात् ही होते थे। प्रत्येक व्यक्ति समिति के वाद–विवाद में ख्याति प्राप्त करने का इच्छुक रहता था। समिति की कार्यवाही केवल राजनीतिक विषयों तक ही सीमित नहीं थी। उत्तर–वैदिककाल में इसमें दार्शनिक प्रश्नों की भी चर्चा होती थी। जब श्वेतकेतु ने विद्यार्जन के बाद पूरे दार्शनिक साहित्य का ज्ञाता होने का दावा किया तो वह पंचालों की 'समिति' के समक्ष प्रस्तुत हुआ। पंचालों की जनसभा के अध्यक्ष राजा प्रवहण जाबालि ने उससे पांच दार्शनिक प्रश्न किए जिनमें से किसी का भी उत्तर वह नहीं दे सका। इस पर जाबालि ने कहा कि ''इन प्रश्नों का उत्तर न देने वाला कोई भी व्यक्ति यह कैसे कह सकता है कि उसकी शिक्षा पूर्ण है।[18] समिति का संबंध धार्मिक अनुष्ठानों और प्रार्थनाओं से भी था। समिति में सभी एकमत होकर निर्णय पर पहुंचे, इसके लिए भी प्रार्थनाएं की जाती थीं। देवताओं को अर्पित बलि से भी समिति का संबंध था। एक ऋचा में समिति में अग्नि का आवाहन किय गया है, ताकि वह बलि का अपना अंश ग्रहण करे। इसमें यह कामना की गई है कि देवताओं के बीच भी एक देवा समिति हो।[19] समिति के कुछ सैनिक कार्य भी होते थे, क्योंकि टीकाकारों ने समिति शब्द का अर्थ युद्ध या व्यूह लगाया है। यास्क ने इसका अर्थ युद्ध बतलाया है।[20] सायण ने भी समिति का अनुवाद युद्ध या संग्राम किया है।[21] अनेक उल्लेखों से यह प्रकट होता है कि 'समिति' अत्यधिक अधिकारों से सम्पन्न थीं। लेकिन जहां वैदिक काल के प्रारम्भ में यह संस्था सर्वोच्च शक्ति सम्पन्न थी वहीं उत्तर वैदिक काल के इसके अधिकारों का ह्रास होने लगा तथा राजा इस पर हावी होने लगा।

आश्चर्य की बात है कि परवर्ती सहिंता और ब्राह्मणों ग्रन्थों में समिति का कोई उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु उपनिषद् काल में आते ही हम समिति की महत्ता को पुनः प्रतिष्ठित देखते हैं, परन्तु उपनिषद्–काल के पश्चात् समिति पूर्ण रूप से तिरोहित हो जाती है। कहीं पर भी उसका नाम सुनाई नहीं देता। सभा एवं समिति के स्वरूप के बारे में विद्वानों में मतभिन्नताएं हैं। हिलब्रांट के अनुसार 'सभा' और 'समिति' में कोई भेद नहीं हो सकता, दोनों एक ही हैं। लेकिन स्वयं अथर्ववेद में चार बार सभा एवं समिति का अलग–अलग रूपों में उल्लेख किया गया है। उसी संदर्भ में लुडविग ने उपयुक्त विचार दिया है कि सभा होमरकालीन गुरुजन जैसी संस्था थी जबकि समिति समस्त जनसमुदाय की संस्था थी।

संदर्भ

1. जे0पी0 शर्मा, ऐन्शेन्ट इण्डियान रिपब्लिक्स।
2. ऋग्वेद, 10.97.6
3. अथवेर्वद, 7.12.1, 10.8.8–13
4. शतपथ ब्राह्मण, 5.3.1.10; तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1.1.10.6
5. यू0एन0, घोषाल, स्टडीज इन इंडियन हिस्ट्री कल्चर, पृ0 321
6. काशी प्रसाद जायसवाल, हिन्दू राज्यशास्त्र, पृ0 19–20
7. वाजसनेयी संहिता, 16.24
8. ऋग्वेद, 10.70.14, 7.28.6
9. वही, 10.34.6, 8.4.9.
10. शतपथ ब्राह्मण, 3.3.4.14
11. ऐतरेव ब्राह्मणस, 8.21
12. काशी प्रसाद जायसवाल, पूर्व निर्दिष्ट, पृ0 13
13. ऋग्वेद 10.70.10, यजुर्वेद 30.6
14. अथवेर्वद, 8, 10.5
15. अल्तेकर, स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन एन्शियेण्ट इण्डिया, पृ0 144
16. ऋग्वेद 10.191.2–3, 10.166.4
17. अथर्ववेद, 5.19.15
18. वृहदारण्यक उपनिषद, 41.2 छांदोग्य उपनिषद, टए 3
19. अथर्ववेद, 18,ए 1ण्26
20. यास्क, निरुक्त, 2ए 107
21. सायण, ऋग्वेद का भाष्य 10ए 97ण्6.